REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2019

काँग्रेस पार्टी का गरम दलः एक अवलोकन

डॉ० देवेन्द्र कुमार आजाद
एम० ए० (इतिहास), पी–एच०डी० , व्याख्याता, एल०सी०एस० कॉलेज,
एल० एन० एम० यू०, दरभंगा.

सार

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना 72 प्रतिनिधियों की उपस्थिति के साथ 28 दिसम्बर 1885 को बॉम्बे के गोकुलदाल तेजपाल संस्कृत महाविद्यालय में हुई थी। इसके संस्थापक महासचिव (जनरल सेक्रेटरी) ए ओ ह्यूम थे जिन्हांने कलकत्ते के व्योमेश चन्द्र बनर्जी को अध्यक्ष नियुक्त किया था। अपने शुरुआती दिनों में काँग्रेस का दृष्टिकोण एक कुलीन वर्ग की संस्था का था। इसके शुरूआती सदस्य मुख्य रूप से बॉम्बे और मद्रास प्रेसीडेंसी से लिये गये थे। काँग्रेस में स्वराज का लक्ष्य सबसे पहले बाब गंगाधर तिलक ने अपनाया था।

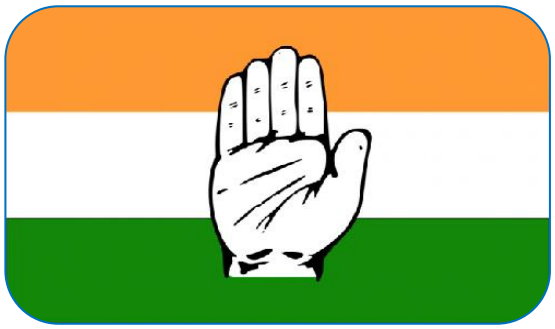

मुख्य शब्दः– काँग्रेस पार्टी, जन आंदोलन, राजनीतिक दृष्टि.

प्रस्तावनाः

गरम दल भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के अंदर ही सदस्यें के मतभेद के कारण उपजा एक धड़ा था जिसके नेता लाल लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक और विपिनचंद्र पाल थे। बंगाल विभाजन के बाद काग्रेस के नरम दल के लोगा के साथ इस दल के स्पष्ट विरोध सामने आये। स्वदेशी आंदोलन की शुरूआत बंगाल विभाजन के परिणामस्वरूप (1905) हुई जिसमें ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार किया गया और स्वदेशी उत्पादन को प्रोत्साहित किया गया। गरम दल नेता अरविंद घोष, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, विपिन चंद्र पाल तथा ला लाजपत राय स्व्देशी आंदोलन को पूरे देश मे लागू करना चाहते थे जबकि नरमपंथ सिर्फ इसे बंगाल तक सीमित रखना चाहते थे। मतभेद बढ़ते गये तथाा 1907 के कांग्रेस के अधिवेशन मे कांग्रेस 'नरमदल' व गरमदल' में विभाजित हो गई गरम दल वाले वन्द्रमातरम् को राष्ट्र गान बनाना चाहते जबकि नरम दल वाले जन गण मन के समर्थक थे।

प्रारंभिक वर्ष

1907 में कांग्रेस में दो दल बन चुके थे– गरम दल एवं नरम दल। गरम दल का नेतृत्व बाल गंगाधर तिलक, लाल लाजपत राय एवं विपिन चंद घोल (जिन्हें लाल बाल पाल भी कहा जाता है) कर रहे थे। नरम दल का नेतृत्व गोपाल कृष्ण गोखले, फिरोजशाह मेहता एवं दादा भाई नौरोजी कर रहे थे। गरम दल पूर्ण स्वराज की माँग कर रहा था परंतु नरम दल ब्रिटिश राज में स्वशासन चाहता था। प्रथम विश्व युद्ध के छिड़ने के बाद सन् 1916 की लखनऊ बैठक में दोनों दल फिर एक हो गये और होम रूल आंदोलन की शुरूआत हुइ जिसके तहत ब्रिटिश राज में भारत के लयि अधिराजकिय पद (अर्थात डोमिनियम स्टेट्स) की मांग की गयी।

काँग्रेस एक जन आंदोलन के रूप मे

परंतु 1915 में गाँधी जी के भारत आगमन के साथ काँग्रेस में बहुत बड़ा बदलाव आया। चम्पारन एवं खेड़ा में भारतीय स्वतंत्रता सग्राम को जन समर्थन से अपनी पहली सफलता मिली। 1919 में जालियाँवाला बाग हत्याकांड के पश्चात गांधी काँग्रेस के महासचिव बने। उनके मार्ग दर्शन म कांग्रेस कुलीन वर्गीय संस्था से बदलकर एक जनसमुदाय संस्था बन गयी। तत्पश्चात् राष्ट्रीय नेताओं की एक नयी पीढ़ी आीय जिसमें सरदार वल्लभभाई पटेल, जवाहरलाल नेहरू, डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद, महादेव देसाई एवं सुभाष चंद्र बोस आदि शामिल थे। गाँी के नेतृत्व में प्रदश काँग्रेस कोटियों का निर्माण हुआ, काँग्रेस मे सभी पदोके लिये चुनाव की शुरूआत की हुई एवं कार्यवाहियों के लिये भारतीय भाषाओं का प्रयोग शुरू हुआ। काँग्रेस ने कई प्रान्तों में सामाजिक समस्याओं को हटाने के प्रयत्न किये जिन्हें छुआछुत, पर्दाप्रथा एव मद्यपान आदि शामिल थे।

राष्ट्रव्यापी आंदोलन शुरू करने के लिए काँग्रेस को धन की कमी का सामना करना पड़ता था। गाँधीजी ने एक करोड़ रूपये से अधिक का धन जमा किया और इसे बाल गंगाधर तिलक के स्मरणार्थ तिलक स्वराज कोष का नाम दिया। 4 आना का नाममात्र सदस्यता शुल्क भ्ज्ञी किया गया था।

पुरानी नीतियों के असफल होने की बात जैसे–ज्से साफ होती गई वैसे–वैस एक ऐसी नई धारा का जन्म होना अनिवार्य हो गया जो 'पुराने महारथियों की आलोचना करें और वास्तविक कार्यक्रम की मांग करें तथा ऐसी नीति अपनाए जिसका अर्थ साम्राज्यवाद से निश्चित रूप से संबंध तोड़ लेना हो। यह नई धारा जिसका संबंध खासतौर से बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व मेंथा, 19वीं सदी के अंतिम दशक में ही देश के सामने आ गई थी लेकिन वह तब तक कोई निर्णायक भूमिका नहीं अदा कर सकी। जब तक बाद के दशक में स्थितियाँ पूरी तरह तैयार हो गई। तिलक का क्षेत्र बंबई प्रेसीडेंसी में महाराष्ट्र था जहाँ 19वीं सदी के आठवें दशक में महत्त्वपूर्ण किसान विद्रोह हुआ था। तिलक के साथ–साथ जिस नए नेतृत्व का उदय हुआ उसमें बंगाल में विपिनचंद्र पाल और अरविंद घोष तथा पंजाब में लाला लाजपत राय प्रमुख थे।

नई धारा के नेता अपने आपको 'राष्ट्रवादी' तथा अखंड राष्ट्रवादी और राष्ट्रवादीं भी कहते थे। व्यापक तौर पर वे 'नरमदली' नेताओं के मुकाबले 'उग्रपंथी' के रूप में जाने जाते थे। उनमें मात्र इतना ही फर्क था कि एक पक्ष प्रगतिशील वामपंथी पक्ष था और दूसरा दकियानूसी विचारों वाले लोगों का दक्षिणपंथी खेमा था। दरअसल उस स्थिति का एक परस्पर विरोधी चरित्र था जिससे यह पता चलता था, कि राष्ट्रवादी आंदोलन का अभी भी अधकचरा विकास हुआ था।

पुराने महारथियों के मुकाबले विरोध पक्ष की शुरूआत के पीछे निस्संदेह यह आकांक्षा निहित थी कि साम्राज्यवाद के साथ समझौता करने की नीति को तिलांजलि दी जाए और साम्रज्यवाद के विरूद्ध एवं निर्णायक और दृढ़प्रतिज्ञ संघर्ष का रास्ता अपनाया जाए। जहाँ तक इस आकांक्षा का प्रश्न है ये लोग प्रगतिशील और क्रांतिकारी शक्तियां का प्रतिनिधित्व करते थे। लेकिन यह आकांक्षा अब भी उनकी आत्मपरम आकांक्षा थी। अब भी किसी ऐसे जन आंदोलन का आधार नही बना था जो निर्णायक संघर्ष को संभव बना सकता। इन नेताओं का प्रभाव असंतुष्ट निम्न मध्यवर्ग पढ़े लिखे नौजवानों के दिलों पर और खास तौर से निर्धन छात्रों तथा बेरोजगारो की बढ़ती संख्या या अत्यंत निम्न वेतनभोगी बुद्धिजीवियों पर था। बीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षो में इनकी स्थिति लगातार बिगड़ती जा रही थी। इन्हें बराबर यह अहसास होता जा रहा था कि साम्राज्यवादी शासन के अधीन न तो इनकी प्रगति का कोई मार्ग प्रशस्त हो सकता है और न इनकी कोई इच्छा पुरी हो सकती है। ऐसी परिस्थिति में निम्न मध्यवर्ग के लोगों के अंदर इतना धैर्य नहीं था कि वे उच्च वर्ग के नेताओं की उन बातों को सुनते रहे जिनमें धीरे–धीरे विकास होने का आरामदायक सिद्धांत प्रस्तुत किया जाता था। सामाजिक संक्रमण और पुरानी समाज व्यवस्था के आसन्न विघटन के दौर में ऐसे जनता के असंतोष और उसकी दृढ़ क्रांतिकारी शक्ति को बढ़ाने में काफी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। लेकिन इनकी स्थिति ऐसी है कि जब तक ये लोग जन आंदोलनों से अपना संबंध नहीं जोड़ते तब तक ये लोग अपनी आकांक्षाएँ पूरी नहीं कर सकते और ऐसी स्थिति में वे या तो जबानी विरोध व्यक्त करके अपना रोष निकाल लेते हैं या अराजकतावादी और व्यक्तिवादी काम करते हैं जिनका अंततः राजनीतिक दृष्टि से कोई लाभ नहीं होता।

यदि नए नेताओं के पास कोई आधुनिक सामाजिक या राजनीतिक दृष्टि होती, तो वे यह जरूर समझते कि उनका और उनके समर्थकों का मुख्य काम है मजदूरों और किसानों के संगठन को उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुक्ति संग्राम के आधार पर विकसित करना। लेकिन 20वीं सदी के पहले दशक में

भारत की जो स्थिति थी उसमें इस तरह की समझदारी की अपेक्षा करने का अर्थ यह होता कि सामाजिक विकास की मौजूदा व्यवस्था में जैसी समझदारी होनी चाहिए उससे बढ़कर कोई अपेक्षा की जा सकती है।

समाज तथा राजनीति के किसी वैज्ञानिक सिद्धांत के कटे होने के कारण इन नए नेताओं ने नरमदली नेताओं की समझौतावादी और प्रभावित नीति का कारण यह समझा कि पुराने नेताओं के अंदर 'राष्ट्रीयता क अभाव' है और उनके अंदर 'पश्चिमी रंग ढंग' की प्रवृत्तियाँ है। इसलिए नए नेताओं ने अपने प्रहार का निशाना इन प्रवृत्तियों को बनाया। इस प्रकार इन नेताओं ने नरमदली नेताओं की ठीक उन्हीं बातों की आलोचना की जो सचमुच प्रगतिशील बातें थी। इनके मुकाबले में राष्ट्रीय आंदोलन को सामाजिक रूढ़िाद की उन प्रवृत्तियों पर खड़ा करना चाहा जो भारत में अब भी बहुत शक्तिशाली थी। उन्होंन राष्ट्रीय आंदोलन के निर्माण के लिए कट्टर हिंदुत्व का सहारा लिया और इस मान्यता को बल दिया कि आधुनिक पश्चिमी सभ्यता की तुलना में प्राचीन हिंदू या आर्य सभ्यता आध्यात्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ है। उन्होंने भारत के सर्वाधिक प्रगतिशील आंदोलन अर्थात्, राष्ट्रीय आंदोलन को पुरातनपंथी धर्म और आर्थिक अंधविश्वास की नींव पर खड़ा करना चाहा। इस युग से ही भारत में उग्रवादी राजनीति और सामाजिक प्रतिक्रियावाद का घातक गठजोड़ हुआ जिसका राष्ट्रीय आंदोलन के लिए बेहद विध्वंसकारी परिणाम हुआ जिसके प्रभाव को नष्ट करना अब भी बहुत कठिन है।

उग्र राष्ट्रवादी का कट्टर, हिंदूवाद की जबरदस्त प्रतिक्रियावादी शक्तियों के साथ गठबंधन की अभिव्यक्ति 1890 में उस समय हुई जब तिलक ने'एल ऑफ कांसेंट बिल' के खिलाफ अपना अभियान शुरू किया। इस बिल में यह प्रावधान था कि लड़की की उम्र दल की बजाय बारह वर्ष हो जाने के बाद ही उसका पति उसके साथ सहवास कर सकता है। इस बिल का रानाडे तथा अन्य प्रगतिशील राष्ट्रीय नेताओं ने समर्थन किया था। तिलक ने उसके खिलाफ जबरदस्त आंदोलन का नेतृत्व किया और हिंदूवाद की ओर प्रतिक्रियावादी शक्तियों की ओर से आवाज उठाई। बाद में उन्होंने 'गोरक्षा समिति' का गठन किया।

मराठों के राष्ट्रीय नायक शिवाजी की स्मृति में ही नहीं बल्कि हाथी की सूंड़ वाले देवता गणेश की स्मृति में भी धार्मिक ढंग से राष्ट्रीय त्योहार मनाए जाने लगे। बंगाल में कुछ विशेष उत्साही लोगों द्वारा संहार की देवी काली की पूजा भी बड़ी धूमधाम से शुरू की गई।

इसलिए पतनशील और भ्रष्ट तत्वमीमांसा के वर्तमान दूषित घालमेल से, छिन्न–भिन्न हुई ग्रामीण अर्थव्यवस्था के टूटे अवशेषो, से एक लुप्त सभ्यता की दरबारी भव्यता के शवों से, उन्होंने हिंदू संस्कृति का, 'शोषित' हिदू मार्गदर्शक प्रकाश माना।

उन्होंने देखा कि ब्रिटिश पूंजीवादी संस्कृति और विचारधारा की प्रचंड बाढ़ में भारतीय पूंजीपतिवर्ग तथा बुद्धिजीवी पूरी तरह बहे जा रहे हैं इसलिए इस स्थिति पर काबू पाने के लिए उन्होंने एक पुनर्निर्मित कमजोर हिंदू विचारधारा का सहारा लिया, हालांकि वास्तविक जीवन में इस विचारधारा का अब कोइ सहज आधार नहीं रह गया था। अपेक्षाकृत अधिक उग्रपंथी नेताओं द्वारा हर तरह के सामाजिक तथा वैज्ञानिक विकास की भर्त्सना की जाने लगी और हर तरह की पुरानी बातों को सम्मान दिया जाने लगा। यहाँ यह कि बुरी प्रथाओं, स्वेच्छाचारिता और अंधविश्वासों को भी श्रद्धा और सम्मान दिया जाने लगा।

यही वजह थी कि जनता के ये जुझारू राष्ट्रीय नेता, जिनमे से अनेक काफी निडर और निष्ठावान थे और जो अतीत के अवशेषों से लोगों को दूर खींचकर मुक्ति और समझदारी के रास्ते पर आगे बढ़ा सकते थे, व्यवहार में सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों के समर्थक बन गए, जात–पात के भेदभाव और विशेषाधिकारों की हिमायत करने लगे और काफी बढा–चढ़ाकर वर्णन करने वाली एक रहस्यवादी राष्ट्रीय भावना के नाम पर उन्होंने उन सामाजिक और विचारधारा पुरानी बेडियों को बनाए रखने की कोशिश की जो अंग्रेजों के आने से पूर्व यहाँ मौजूद थीं।

कट्टर राष्ट्रवादियों कि धारणा थी कि इसी तरीके से वे साम्रज्यवादी के विरोध के लिए एक राष्ट्रीय जनआंदोलन का निर्माण कर रहे हैं। केवल इसी बात से यह तथ्य समझ में आता है क्योंकि तिलक जैसा बौद्धिक व्यक्ति भी बालविवाह तथा गोरक्षा के समर्थन में आंदोलन चला रहा था।

लेकिन सच्चाई यह थी कि यह नीति सिद्धांत में कही भी व्यवहारिक में नहीं थी। इससे न केवल लाजिमी तौर पर राजनीतिक चेतना के विकास और आंदोलन के प्रति स्पष्टता में बाधा पैदा हुई, बल्कि प्रगामी शक्तियाँ आपस में बंट भी गई। सामाजिक मामलों में उग्रपंथी नेताओं के प्रतिक्रियावादी कार्यक्रमों के कारण ऐसे तमाम लोग आंदोलन से दूर हटते गए जो एक जुझारू राष्ट्रीय नीति का समर्थन करने को तो तैयार थे पर

इतने विलक्षण नहीं थे कि वामपंथी कार्यक्रम के स्थान पर प्रतिक्रियावादी और अलौकिक कूड़ा–कचरा स्वीकृत करने लगे। यह विभाजन मोतीलाल नेहरू के मामले में बहुत साफ तौर पर देखा गया। मोतीलाल नेहरू, एक चरत्रिवान व्यक्ति थे और उग्रपंथियों के विरूद्ध नरमदली नेताओं द्वारा चलाए जा रहे संघर्ष के नेताओं में से एक थे। उनके बारे में उनके पुत्र ने लिखा हैः

''दृढ़ विचारों, ओजस्वी मनोभावों, जबरदस्त आत्माभिमान और महान इच्छाशक्ति से युक्त होने के कारण वह नरमदली विचारों की प्रकृति से काफी दूर थे। और फिर जो 1907 और 1908 में तथा बाद के वर्षो में निस्संदेह वह नरमदलियों में भी नरमदली थे और उग्रवादियों से काफी कटु आलोचक थे, हालांकि, मेरा ख्याल है कि वह तिलक की प्रशंसा करते थे।''

निष्कर्षः

अपने स्पष्ट सोच सेवह इन नतीजे पर पहुँचे थे कि बड़ी जोशी और उग्र भाषा से तब तक कुछ नहीं हो सकता जब तक उस भाषा के अनुकूल व्यवहार न किया जाए। उन्हें ऐसे किसी व्यवहार की संभावना नहीं दिखाई दी– और इसके अलावा इन आंदोलनों की पृष्ठभूमि धार्मिक राष्ट्रवाद थी जो उनकी प्रकृति के विरूद्ध थी। उन्होंने भारत के अतीत के पुनः प्रवर्तन की ओर कभो नहीं देखा। उन्हें इन चीजों से कोई हमदर्दी न थी और वे तमाम पुराने रीति रिवाजों, जातपात के भेदभाव जैसी चीजों को प्रतिक्रियावादी समझते थे और इनसे बेहद नफरत करते थे। उन्होंने पश्चिमी देशों की तरफ देखा और पश्चिमी देशों की प्रगति से काफी आकर्षण महसूस किया। उन्होंने महसूस किया कि इंग्लैड के साथ साहचर्य के जरिए यह प्रगति भारत तक पहुँच सकती है। सामाजिक विकास की दृष्टि से कहें तो 1907 में भारतीय राष्ट्रवादी का जो पुनः प्रवर्तन हुआ, वह निश्चित रूप से प्रतिक्रियावादी था।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1. मैनचेस्टर गारजियन, 24 अप्रैल 1930 टाईम्स 29 अप्रैल 1930 डेली, टेलीफ 9 मई 1930 सिविल एवं मिलिट्री गजट मुम्बई– 1930
2. मुम्बई क्रोनिकल, 29 दिसम्बर 1930
3. कनेक्सन विथ दी रिवोल्युशनरी ऑरगानाईजेशन इन बिहार एण्ड उड़ीसा शीर्षक से रिपोर्ट–बिहार सरकार द्वारा 1917 प्रकाशित।
4. एडभान्स 4 जनवरी 1933 दत्त कम्पनी चटगांव आर्भरी रेड रेमनीसेंसेज, मुम्बई 1945
5. अली मौलाना मुहम्मद का अध्यक्षीय भाषण, अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का 38वां अधिवेशन कोकोनाडा में 1923 में।